International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
ISSN -2393-8048, January-June 2022, Submitted in June 2022, iajesm2014@gmail.com

एकात्म आर्थिक चिन्तन : अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आधारशिला

*अभिषेक कुमार मिश्र (सहायक आचार्य) लाइफलांग लर्निंग एंड एक्सटेंशन (छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय,कानपुर)
**प्रशान्त वर्मा शोधार्थी (पीएचडी) आई.सी.पी.आर (J.R.F.) दर्शनशास्त्र विभाग (दिल्ली विश्वविद्यालय)

सारांश

'एकात्म मानववाद' भारत का वह स्वर्णिम सिद्धांत है जिसमें राजनीति दर्शन के साथ आर्थिक विचार भी समाहित है। ये सिद्धांत मानवीय मूल्यों के पतन के साथ-साथ आर्थिक अस्वस्थता के लिए आर्थिक सिद्धांतों को जिम्मेदार मानता है। भारत के समग्र विकास के लिये आवश्यक है कि अर्थनीति का भारतीयकरण किया जाये। वास्तव में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मनुष्य के केवल आर्थिक महत्व को पहचानती है, जिसमें सभी निर्णय भौतिक धन के लाभ और हानि की गणना पर आधारित होते हैं। एकात्म मानववाद, इस व्यवस्था के खिलाफ है, क्योंकि इस तरह के विचारों पर आधारित दर्शन अधूरा, अनैतिक और अमानवीय है क्योंकि इससे मानव का पूरी तरह से अवमूल्यन होता है। ऐसी प्रणाली सामाजिक रूप से अस्थिर है क्योंकि उत्पादन लाभ को अधिकतम करने के लिए किया जाता है, न कि लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए। एकात्म मानववाद, समाजवादी व्यवस्था का भी विरोधी है। उनके अनुसार समाजवाद पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ है लेकिन समाजवाद भी मानव के महत्व को स्थापित करने में विफल रहा।

समाजवादियों ने केवल राज्य के हाथों में पूंजी के स्वामित्व को स्थानांतरित करके खुद को संतुष्ट कर लिया है। राज्य के सभी व्यवसाय कठोर नियमों और विनियमों द्वारा संचालित होते हैं। आमतौर पर, व्यक्तिगत विवेक के लिए कोई जगह नहीं है और जहां इस तरह के विवेक की अनुमति है वहाँ थोड़ी सी भी शिथिलता, भ्रष्टाचार और पक्षपात के परिणाम के रूप में सामने आती है ।

दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार, न तो पूंजीवादी और न ही समाजवादी व्यवस्था मनुष्य और समाज के लाभ के लिए एक सामाजिक व्यवस्था विकसित करने के लिए सक्षम है। इन दोनों ही व्यवस्थाओं में समाज की स्थापना के लिए मानवतावादी मूल्य कम हैं। इसलिए ऐसी आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जो हमारे मानवीय गुण और सभ्यता के विकास में सहायक हो। भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत 'एकात्म अर्थनीति' ही विकल्प बन सकता है। एकात्म अर्थनीति में, 'एकात्म मानव' के अर्थायाम की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। अर्थायाम से तात्पर्य, समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था की जाये। समाज के प्रत्येक सक्षम सदस्य को काम की गारंटी आर्थिक प्रणाली का उद्देश्य होना चाहिए। इस अर्थनीति में आवश्यक सभी बुनियादी चीजों के उत्पादन के साथ-साथ राष्ट्र के संरक्षण और विकास पर भी ध्यान दिया गया है। एकात्म अर्थनीति का उद्देश्य हर क्षेत्र में राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाना है। वर्तमान में स्वदेशी विचारों का अत्यधिक महत्व है जिसे 'हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आधारशिला' बनाया जाना चाहिए जिससे आर्थिक क्षेत्र में हम आत्मनिर्भर और स्वतंत्र बन सके।

मुख्यतः शोध पत्र में इस बात की चर्चा की जायेगी कि नव-भारत के निर्माण के लिए आवश्यक आत्मनिर्भर भारत में 'एकात्म अर्थनीति' क्या है? 'एकात्म अर्थनीति' किस प्रकार नीति निर्माण के द्वारा सामाजिक और आर्थिक तत्वों में समन्वय स्थापित कर सकती है? विराट भारत निर्माण में चिति की क्या भूमिका है?

मुख्य शब्द : एकात्म मानववाद, आर्थिक दर्शन, अंत्योदय , स्वदेशी

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के प्रमुख शिल्पकार होने के साथ-साथ, एक प्रमुख भारतीय दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार और राजनीतिक वैज्ञानिक भी थे। स्वतंत्रता के बाद भारत में ऐसे जन नेता बहुत कम हुए हैं, जो राजनीति के दार्शनिक भी हों। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय उन्हीं कुछ सर्वोत्तम में से एक थे। पं. दीनदयाल उपाध्याय भारतीय राजनीति एवं आर्थिक चिंतन को दार्शनिक दिशा देने वाले एक पुरोधा और एकात्म मानववाद के संस्थापक थे। इसी एकात्म मानववाद के दर्शन में उन्होंने अपने आर्थिक विचारों को भी शामिल किया है। पं. दीनदयाल उपाध्याय मानवीय मूल्यों के पतन के साथ-साथ आर्थिक अस्वस्थता के लिए मौजूदा आर्थिक सिद्धांतों को जिम्मेदार मानते थे। उन्होंने एकात्म मानववाद में चर्चा करते हुये कहा है "पिछली कुछ शताब्दियों के आर्थिक सिद्धांत के आधार पर समाज की संरचना के परिणामस्वरूप मानव का गहन अवमूल्यन हुआ है।" (उपाध्याय द. , 2004, p. 21). पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अर्थनीति के भारतीयकरण की बात समझाने के लिये मुख्यतः तीन किताबों को लिखा है। इन तीन किताबों में पहली किताब है 'दो योजनायें: वायदे, अनुपालन, आसार', दूसरी किताब है 'भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा' और तीसरी पुस्तक है 'अवमूल्यन-एक महान क्षति' ।

पं. दीनदयाल उपाध्याय समग्र विकास के लिये पाश्चात्य देशों की नकल को भारत के लिये अनुकूल नहीं मानते थे क्योंकि हमारे देश और पाश्चात्य की परिस्थितियों में बहुत फर्क है। अगर हमें अपने देश का विकास करना है तो अर्थनीति का भारतीयकरण करना होगा। अपने इसी मत को स्पष्ट करते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है : "देश का दारिद्र्य दूर होना चाहिए, इसमें दो मत नहीं है किन्तु प्रश्न यह है कि यह गरीबी कैसे दूर हो? हम अमेरिका के मार्ग (पूंजीवाद) पर चले या रूस के मार्ग (समाजवाद) को अपनाये अथवा यूरोपीय देशों का अनुकरण करें?" (उपाध्याय द. , 2004, p. 11)

वास्तव में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मनुष्य के केवल आर्थिक महत्व को पहचानती है, जिसके संदर्भ में सभी निर्णय भौतिक धन के लाभ और हानि की गणना पर आधारित होते हैं। जिस तरह से भूमण्डलीकरण की अवधारणा ने जोर पकड़ा है उसने अर्थनीति का चेहरा ही बदल दिया है। पश्चिमी समाज, बाजार को निरंतर और व्यवस्थित रूप से चलते रहने के लिए मनुष्य की इच्छाओं को किसी भी प्रकार से बढ़ाना वांछनीय मानते हैं। आम तौर पर इच्छा उत्पादन से पहले होती है लेकिन अब स्थिति विपरीत हो गयी है। लोगों को उन चीजों की इच्छा और उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाता है जो उत्पादित की जा रही हैं। पहले से ही उत्पादित माल के लिए बाजारों की खोज जारी है, अगर मांग मौजूद नहीं है तो मांग पैदा करने के लिए व्यवस्थित प्रयास किए जाते हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय, इस व्यवस्था के खिलाफ थे, उनके अनुसार इस तरह के विचारों पर आधारित दर्शन अधूरा, अनैतिक और अमानवीय है क्योंकि इससे मानव का पूरी तरह से अवमूल्यन होता है। ऐसी प्रणाली सामाजिक रूप से अस्थिर है क्योंकि उत्पादन लाभ को अधिकतम करने के लिए किया जाता है, न कि लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए। पं. दीनदयाल उपाध्याय उपरोक्त आर्थिक व्यवस्था को न केवल सामाजिक रूप से अस्थिर मानते हैं बल्कि संपूर्ण प्रकृति के लिए भी खतरनाक मानते थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय, समाजवादी व्यवस्था के भी विरोधी है। उनके अनुसार समाजवाद पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ है लेकिन समाजवाद भी मानव के महत्व को स्थापित करने में विफल रहा। समाजवादियों ने केवल राज्य के हाथों में पूंजी के स्वामित्व को स्थानांतरित करके खुद को संतुष्ट कर लिया है। राज्य के सभी व्यवसाय कठोर नियमों और विनियमों द्वारा संचालित होते हैं। आमतौर पर, व्यक्तिगत विवेक के लिए कोई जगह नहीं है और जहां इस तरह के विवेक की अनुमति है वहाँ थोड़ी सी भी शिथिलता, भ्रष्टाचार और पक्षपात के परिणाम के रूप में सामने आती है ।

इन प्रश्नों के उत्तर को जानने के क्रम में जब पश्चिम के विचारों को ध्यान में रखकर मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाता है तो एक बात स्पष्ट रूप से समझ में आती है कि पश्चिम के विचार प्रतिक्रियावादी विचार है अर्थात् किसी घटना का परिणाम है । अगर पीछे मुड़कर देखा जाये तो ध्यान में आता है कि जब राज काज में चर्च का हस्तक्षेप जरूरत से ज्यादा हो गया तो सेकुलरिज्म आया, जब राजतंत्र में राजा की मनमानी से सत्ता चलने लगी तो लोकतंत्र आया, ठीक इसी प्रकार ओद्योगिक क्रांति से पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद आया ।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार जो विचार या सिद्धांत प्रतिक्रिया से उत्पन्न होते है, वो एक विधायक परिणाम नहीं दे सकती है । दूसरी बात जो समझने लायक है वो यह है कि ये सारे विचार खण्डित है क्योंकि एकांगी है और एक ही पक्ष का विचार करते है । ये भौतिकतावादी, भोगवादी और जड़वादी है होने के साथ-साथ उपभोक्तावादी भी है । एक बात और देखने लायक है कि इन विचारों में आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है, इनमें कोई तारतम्य नहीं है, ये असंगत है । एक सिद्धांत, दूसरे सिद्धांत का परस्पर विरोधी है । इस आधार पर दीन दयाल जी ने निष्कर्ष निकाला कि ये पश्चिम की व्यवस्थायें सार्वभौमिक और सार्वकालिक नहीं है । ये विशेष परिस्थिति से जन्में है इसलिये हर जगह लागू नहीं किया जा सकता है ।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, न तो पूंजीवादी और न ही समाजवादी व्यवस्था मनुष्य और समाज के लाभ के लिए एक सामाजिक व्यवस्था विकसित करने के लिए सक्षम है। इन दोनों ही व्यवस्थाओं में समाज की स्थापना के लिए मानवतावादी मूल्य कम हैं। इसलिए, उनके अनुसार ऐसी आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जो हमारे मानवीय गुण और सभ्यता के विकास में सहायक हो।

वर्तमान में विश्व भीषण संभ्रम के चौराहे पर सम्भ्रमित, अगतिक एवं किंकर्तव्य विमूढ़ अवस्था में खड़ा है। इस चक्रव्यूह से छुड़ा सकने के लिये तीसरे विकल्प की आवश्यकता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने बड़े ही आत्म विश्वासपूर्वक कहा है कि भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति ही ऐसा तीसरा विकल्प बन सकता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय की अर्थनीति में मनुष्य केंद्रीय विषय है क्योंकि वह मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। उन्होंने कहा है "मनुष्य, ईश्वर की सर्वोच्च रचना, अपनी खुद

की पहचान खो रहा है। हमें उसे उसकी सही स्थिति में फिर से स्थापित करना चाहिए।" (उपाध्याय द. , 2004, p. 41) दीन दयाल जी ने सबसे बड़ा प्रश्न तो यही उठाया कि हम ये ही स्पष्ट नहीं कर पा रहे है कि व्यक्ति क्या है ? जहाँ समाज शास्त्र में इसे सोशल एनिमल कहते है वही राजनीति वाले इसे पोलिटिकल एनिमल कहते है ।

दीनदयाल जी कहते है ये सिद्धांत अधूरे है, ये गलत है और समाज में अव्यवस्था पैदा करेंगे। हम जब आर्थिक क्षेत्र में आदमी को इकनोमिक मैन कहेंगे तो उसका ध्यान इस बात पर होगा कार्य करने पर धन मिलेगा कि नहीं, अगर धन मिलेगा तो कार्य किया जायेगा नहीं तो कार्य नहीं होगा। इससे समाज में दूषित भावना आ रहा है क्योंकि ये व्यक्ति उपभोक्ता बन कर जब आएगा तो सामान तो ज्यादा लेगा पर पैसा कम से कम देना चाहेगा, ठीक विक्रेता पैसा ज्यादा लेगा पर सामान कम देगा ।

दीनदयाल जी ने प्रश्न किया, क्या ऐसे में समाज चल पायेगा ? आज कालाबाजारी, घोटाले सब इसी कारण हो रहे है क्योंकि धन को ही हमने सब कुछ मान लिया है । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। इसलिये वह समाज की सम्पत्ति के एक हिस्से का संरक्षक भी है। व्यक्ति स्वयं समाज पुरूष का अंग है, अतः वह स्वयं ही समाज की धरोहर है। इसलिए सम्पत्ति का अमोघ अधिकार तो समाज का ही होना चहिये लेकिन वे समाज की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था के नाते 'राज्य' को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यही कारण है कि निजी संपत्ति का केन्द्रीयकरण या सामाजिक अधिकार के नाम पर राज्य संपत्ति के केन्द्रीयकरण को वे समान रूप से गलत मानते हैं। आम आदमी को पूंजीपतियों अथवा राज्य संस्था का मजदूर या गुलाम बना देना मानवता का अपमान हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय, सम्पत्ति पर न तो व्यक्ति का अमर्यादित स्वामित्व स्वीकार करते हैं और न ही अमर्यादित राज्याधिकार इसलिये वह स्वामित्व के केन्द्रीयकरण के खिलाफ हैं। अतः वे विकेंद्रित राज्य व विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक हैं।

अपनी नीति को स्पष्ट करने के लिए पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थनीति विकास की 'एक दिशा' नामक पुस्तक में 'एकात्म मानव' के अर्थायाम की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। अर्थायाम से तात्पर्य, समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था की जाये। अगर सभी के लिए एक वोट राजनीतिक लोकतंत्र का आधार है तो सभी के लिए काम करना आर्थिक लोकतंत्र का एक पैमाना है। समाज के प्रत्येक सक्षम सदस्य को काम की गारंटी, हमारी आर्थिक प्रणाली का उद्देश्य होना चाहिए। इस अर्थनीति में आवश्यक सभी बुनियादी चीजों के उत्पादन के साथ-साथ राष्ट्र के संरक्षण और विकास पर भी ध्यान दिया गया है। उनका मानना था कि मनुष्य की आकांक्षाओं की पूर्ति आवश्यक है लेकिन आकांक्षाओं की पूर्ति का आधार धर्म होना चाहिये। इसलिए भौतिक समृद्धि के संबंध में, उन्होंने धर्म के अनुरूप अर्थ को प्राप्त करने पर जोर दिया है।

SHRADHA EDUCATIONAL ACADEMY

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य उद्देश्य होने चाहिए-

- प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर और राष्ट्र की रक्षा के लिए तैयारियों का आश्वासन।
- इस न्यूनतम जीवन स्तर से और अधिक वृद्धि जिससे व्यक्ति और राष्ट्र अपनी 'चिति' के आधार पर विश्व प्रगति में योगदान करने के साधन प्राप्त करते हैं।
- प्रत्येक सक्षम निकाय नागरिकों को अर्थ रोजगार प्रदान करना जिससे उपरोक्त दो उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में अपव्यय से बचा जा सके।
- उत्पादन के विभिन्न कारकों (सात 'एम') की उपलब्धता और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त मशीनों का विकास करना।

इस प्रणाली को मदद करनी चाहिए और इंसान, व्यक्ति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इसेसांस्कृतिक और जीवन के अन्य मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए। (Prabhakaran, 2018, p. 69).चिति अर्थात् राष्ट्रीय चेतना के अस्तित्व के कारण ही राष्ट्र का अस्तित्व होता है । चिति के क्षीण होने की स्थिति में राष्ट्र दुर्बल हो जाता है । किसी राष्ट्र की चिति का लोप होते ही उस राष्ट्र का भी लोप हो जाता है । यदि चिति शक्तिमान और प्रकाशमय है तो उस राष्ट्र का बहुमुखी विकास होता है। प्रत्येक राष्ट्र की चिति ही उसका जीवन लक्ष्य होता है। राष्ट्र यदि उस जीवन लक्ष्य के अनुसार चलता रहे तो सम्पूर्ण राष्ट्र परम सुख और वैभव का अनुभव करता है। हमारे यहाँ इसे 'धर्म' के नाम से पुकारा जाता है। भारत का राष्ट्रीय जीवन समय समय पर अलग अलग रूप में व्यक्त होता रहा है किंतु उसके मूल तत्व में सदैव धर्म की भावना विद्यमान रही है। धर्म के ये नियम तात्विक आधार पर निर्धारित होते है । दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार - "ये नियम मनमाने नहीं हो सकते है, उनसे

उन सत्ता की धारणा होनी चहिये जिसके लिये वे बने है तथा वे दूसरी सत्ता के अविरोधी और पोषक होने चहिये"। (उपाध्याय द. , 2004, p. 53).

पं. दीनदयाल उपाध्याय न केवल अधिकारों को बल्कि कर्तव्यों को भी महत्व देते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के विकास के लिए दोनों की आवश्यकता है क्योंकि मनुष्य के पास उसके पेट के साथ - साथ हाथ भी होते हैं। इस अर्थनीति की धारणा के अनुसार व्यक्ति को अपनी रोटी स्वयं कमानी चाहिए और साथ ही साथ दूसरों को भी खिलानी चाहिए। जिससे एक समाज में बच्चे, बूढ़े और रोगग्रस्त जो नहीं भी कमा सकते है उनकी भी आवश्यकता पूरी हो जायेगी और हर व्यक्ति के पास खाने के लिए पर्याप्त भोजन होगा। इस प्रकार समाज द्वारा सभी ध्यान रखा जाना चाहिए। इससे ये स्पष्ट होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार मनुष्य के चारों ओर घूमते हैं और इस प्रकार इन्हें मानवतावादी के रूप में चिह्नित किया जा सकता है।

वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचारों को बड़े स्तर पर लेकर आगे बढ़ना ही देश के लिए हितकारी है और वर्तमान सरकार इसी के अनुसार चल रही है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दर्शन भारतीयता के मूल से निकला हुआ दर्शन है, किन्तु सरकारों की अपनी वैचारिकता में मतभेद होने के कारण देश में लंबे समय तक दीन दयाल उपाध्याय जी के विचारों की उपेक्षा की, जिसका दुष्परिणाम हम आज बढ़ते पूंजीवाद, आर्थिक व्यवस्थाओं के केन्द्रीकरण, आयात पर निर्भरता, असंतुलित औद्योगीकरण आदि के रूप में देख सकते हैं।

दीन दयाल जी विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि भारत की अर्थव्यवस्था का आधार, देश के गांव और जनपद होने चाहिए। भारत को आत्मनिर्भर होना चाहिए। अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा' में उपाध्याय जी लिखते हैं, "यह भी आवश्यक है कि हम आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनें। यदि हमारे कार्यक्रमों की पूर्ति विदेशी सहायता पर निर्भर रही तो वह अवश्य ही हमारे ऊपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बंधन - कारक होगी। हम सहायता देने वाले देशों के आर्थिक प्रभाव में आ जायेंगे। अपनी आर्थिक योजनाओं की सफल पूर्ति में संभव बाधाओं को बचाने की दृष्टि से हमें अनेक स्थानों पर मौन रहना पड़ेगा"।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी हर हाथ को काम के सिद्धान्त को प्रजातन्त्र की रीढ़ मानतें थे। उनके अनुसार काम जीविकोपार्जन हो तथा व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतत्रंता हो। यदि काम के बदले राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग उसे नहीं मिलता तब उस काम की गिनती बेगार में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन न्यायोचित वितरण तथा किसी न किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है। उनके अनुसार शासन का उद्देश्य अंत्योदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए। उनका मानना था कि किसी भी देश का आर्थिक विकास तभी संभव है जब हम समाज के अन्तिम छोर पर खड़े व्यक्ति का विकास कर सकें अर्थात समाज के निचले पायदान पर जो व्यक्ति है उसके उत्थान का प्रयास प्राथमिकता होनी चाहिए।

इसके आगे दीनदयाल बहुत गंभीर बात कहते हैं। "जो राष्ट्र दूसरों पर निर्भर रहने की आदत डाल लेता है, उसका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। ऐसा स्वाभिमान शून्य राष्ट्र कभी अपनी स्वतन्त्रता की कीमत नहीं आंक सकता है"।

ऐसा माना जाता है कि भारत, गाँव और किसानों का देश है। यहाँ गांव और किसान अगर समृद्ध हुए तो देश की प्रगति हर दिशा में संभव है। कोविड के समय में देश के सामने खड़ी आर्थिक चुनौतियों के बीच यकीनन दीन दयाल जी का दर्शन हमें रास्ता दिखा रहा है। आत्मनिर्भर भारत के द्वारा लघु, सूक्ष्म एवं कुटीर (अंशकालिक एवं पूर्ण कालिक) उद्योग को बढ़ावा देना वक्त की मांग है, क्योंकि मजदूर अपने गांवों की तरफ पलायन कर रहे हैं। वो किसी तरह अपने घर पहुंचना चाहते हैं। उनके पास इस संकट की घड़ी में जीवनयापन करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। भोजन और स्वास्थ्य के साथ आजीविका को चलाने का संकट उन्हें बेचैन किए हुए है। इसलिए आवश्यक है कि उनके रोजगार की व्यवस्था उनके शहर या गाँव में ही की जाए। ये तभी संभव है जब कुटीर, लघु उद्योगों की शुरुआत हो और उन्हें इससे जोड़ा जाए।

कुटीर उद्योग की महत्ता को समझते हुए 25 जनवरी 1954 में पांचजन्य के लिए लिखे अपने विस्तृत लेख में दीनदयाल जी ने लिखा, "औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने, जनता को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने तथा सम्पति के सम विभाजन की व्यवस्था करने के लिए हमें कुटीर उद्योगों को पुन: विकसित करना पड़ेगा। प्राचीन भारत में सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा इन कुटीर उद्योगों पर ही खड़ा था। उस समय न केवल देश स्वावलंबी था वरन उसकी लघुतम इकाई ग्राम तक स्वावलंबी थे। आर्थिक स्वाधीनता के लिए हमें इस रीढ़ को पुनः खड़ा करना होगा।" (Verma, 2020, pp. 14-15)

दीनदयाल जी केवल कुटीर उद्योगों को पुरानी पद्धति से शुरू करने की बात नहीं करते थे बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए इस व्यवस्था को आगे बढ़ाने की बात करते थे। यही समय है जब आयात पर निर्भरता छोड़कर स्वदेशी वस्तुओं पर निर्भरता बढ़ानी होगी और निर्यात के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ना होगा। यह सुखद है कि नरेंद्र मोदी सरकार ने वक्त की मांग को बखूबी समझा है। मजदूरों का पलायन, किसानों की समस्याएँ, रोजगार के संकटों को देखकर हम खुद समझ सकते हैं कि जो बात दीनदयाल जी ने उस वक्त कही थी वह सत्य के कितने करीब थी। हमारे पास फिर एक अवसर आया है जब हम आत्मनिर्भरता के लिए नई व्यवस्था को विकसित कर सकते हैं और सरकार यह करने की ओर कदम बढ़ा चुकी है। स्टार्टअप, स्टैंडअप जैसी योजनाओं के माध्यम से सरकार ने अन्तिम व्यक्ति को सक्षम एवं स्वावलम्बी बनाने की दिशा में कार्य को आगे बढ़ाया है।

वर्तमान में आज जब आत्मनिर्भर भारत, राष्ट्र की जरूरत है तब पं. दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म अर्थनीति को समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि आज से कई वर्ष पूर्व की अपनी अर्थनीति में इन सब की चर्चा बड़े विस्तार से की है। इस सिद्धांत को *" ज ग क ग य ग इ "* के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यहां 'ज' जन का परिचायक है, 'क' कर्म की अवस्था का, 'व' व्यवस्था का, 'य' यंत्र का तथा 'इ' समाज की प्रभावी इच्छा या इच्छित संकल्प का द्योतक है। 'इ' तथा 'ज' तो सुनिश्चित है। 'इ' और 'ज' के अनुपात में 'क' तथा 'य' को सुनिश्चित करना है। ध्यान देने योग्य बात यह है अगर औद्योगीकरण को लक्ष्य बनाया जायेगा तो 'य' सबको नियंत्रित करता है जिससे 'य' के अनुपात में जन छंटनी होती है। 'य' के अनुपात में 'इ' को भी अति उत्पादन का अनुसरण करना पड़ता है जो कि सर्वाधिक अवांछनीय है। 'ज' की छंटनी कर देने वाली कोई भी अर्थव्यवस्था अलोकतांत्रिक है तो 'इ' को नियंत्रित करने वाली अर्थव्यवस्था तानाशाही है। अतः 'ज' तथा 'इ' के नियंत्रण में 'क' का नियोजन होना चाहिए। वही लोकतांत्रिक एवं मानवीय अर्थव्यवस्था कही जा सकती है।

आज अगर केन्द्र सरकार की विकास यात्रा के में सबका साथ सबका विकास की मूल भावना नजर आती है तो प्रेरणा स्त्रोत्र के रूप में दीनदयाल उपाध्याय जी के विचार ही दिखाई पड़ते हैं। उनका मानना था कि जब तक व्यक्ति आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होगा वह राजनीतिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो सकता। आज सरकार आम व्यक्ति को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में जिन प्रयासों पर सतत् काम कर रही है वह कार्य इन्हीं विचारों के ओत-प्रोत नजर आते हैं। पण्डित जी ने अपने चिन्तन में आम व्यक्ति से जुड़ी जिन चिन्ताओं और समाधानों को समझाने का प्रयास दशकों पहले किया था आज भारत सरकार द्वारा उन्हीं विचारों को केन्द्र में रखकर नीतियों का निर्माण किया जा रहा है।

भारत में विकास के दो सिद्धांत सबसे ज्यादा प्रचलित है जिनमें एक है - गांधीजी द्वारा दिया गया 'सर्वोदय' - अर्थात सभी का विकास और दूसरा है पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिया गया 'अंत्योदय' - अंतिम व्यक्ति का भी विकास। ये दो अवधारणाएं वास्तव में अन्योन्याश्रित हैं और भारत को 'अंत्योदय के माध्यम से सर्वोदय' को अपनाना है! पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, भारत को एक ऐसे आर्थिक मॉडल की आवश्यकता है जो न तो समाजवादी हो और न ही पूंजीवादी मॉडल। भारत के लिए स्वदेशी आर्थिक प्रणाली में दुनिया की सभी आर्थिक प्रणालियों के सभी गुण शामिल होने चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय लिखते हैं कि भारत को एक 'चिति' की जरूरत है अर्थात सामान्य मकसद। भारत के सकल घरेलू उत्पाद और जीएनपी में सुधार के लिए पंचायत, ब्लॉक पंचायत, राज्य विधानसभा क्षेत्र, जिला, राज्य और छह राज्य स्तरीय समूहों के सकल राष्ट्रीय खुशी (जीएनएच) में सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पंचायत / नगर निगम / निगम वार्डों का क्षैतिज एकीकरण है ।

आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए सरकार द्वारा पांच स्तंभों का जिक्र किया। इसमें अर्थव्यवस्था, इन्फ्रास्ट्रक्चर, सिस्टम टेक्नोलॉजी ड्रिवेन व डिमांड और सप्लाई की ताकत को इस्तेमाल करने की बात कही गयी है। स्वाभाविक रूप से, राष्ट्रमंडल को हमारे राष्ट्र के सपनों को साकार करने के लिए '7M' दर्शन का को अपनाना पड़ेगा है। विभिन्न कारकों की उपलब्धता और प्रकृति के आधार पर विभिन्न व्यावसायिक संगठन स्थापित कर सकते हैं (सात 'एम'- 1. जनशक्ति 2. सामग्री 3. धन 4. तरीके 5. मशीन 6. नैतिक 7. समय का प्रबंधन।) .

पं. दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म अर्थनीति का उद्देश्य हर क्षेत्र में राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाना है। वर्तमान में स्वदेशी विचारों का अत्यधिक महत्व है जिसे 'हमारी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आधारशिला' बनाया जाना चाहिए जिससे आर्थिक क्षेत्र में हम आत्मनिर्भर और स्वतंत्र बन सके। पण्डित दीनदयाल

ISSN -2393-8048, January-June 2022, Submitted in June 2022, iajesm2014@gmail.com

उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन उस समय जितना समीचीन था उतना ही आज भी है। कोई भी नीति निर्धारक संगठन या सरकार जो गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएं लाना चाहती है एवं मानव कल्याण के मार्ग में प्रशस्त होना चाहती है, उसे दीनदयाल जी के एकात्म-मानववाद एवं अंत्योदय के आर्थिक चिन्तन को आधार बनाना होगा। वर्तमान केंद्र सरकार की आर्थिक एवं मानव कल्याणकारी नीतियां अत्यन्त प्रभावकारी हैं। जिसमें भविष्य की झलक दिखाई देती है। जिससे मानव कल्याण के लिए एक रचनात्मक एवं प्रगतिशील परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकें अपितु मानव कल्याण के स्थायी विकास को सकारात्मक दिशा मिल सके।

सन्दर्भ सूची :

Prabhakaran, P. (2018). *Rebooting India through Practical Integral Humanism.* Notion Press.

Verma, P. (2020). Understanding Sarvodya : Gandhi and Beyond. In D. A. Riyaz, & S. Hoque (Eds.), *REASSESSING GANDHIAN THOUGHT* (pp. 193-203). New Delhi: Shivalik Prakashan.

उपाध्याय, द. (2004). *एकात्म मानववाद.* नोएडा: जागृति प्रकाशन.

उपाध्याय, द. द. (वि. सं. 2005). चिति-2. *राष्ट्र धर्म, 6.*

गाँधी, म. (1955). *सर्वोदय.* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, म. (1957). *सत्य के प्रयोग.* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

गाँधी, म. (1963). *ग्राम स्वराज्य.* अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.

धर्माधिकारी, द. (1957). *सर्वोदय-दर्शन.* काशी: अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन.

वर्मा, प. (जनवरी 2020, January). दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता. *International Journal of Social Science and Literature, 3*(1), 24-27.

शम्भू जोशी. (2016). न्यासिता की पुनर्व्याख्या. *ट्रस्टीशिप : ए पाथ लेस ट्रेवल्ड* (पृ. 263-276). में वर्धा: इंस्टीट्यूट ऑफ़ गाँधीयन स्टडीज.

सिंह, ड. श. (2013). *समाज दर्शन का सर्वेक्षण.* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.